Journal of Advances in Developmental Research (IJAIDR)

E-ISSN: 0976-4844 ● Website: www.ijaidr.com ● Email: editor@ijaidr.com

आदिवासी अस्मिता और राजनीतिक चेतना
भील जनजाति के विशेष संदर्भ में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन
(राजस्थान के संदर्भ में)

मुकेश कुमार चाहर[1], डॉ. इन्द्राज मल यादव[2]

[1]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, पंडित दिन दयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर

[2]सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, सेठ नन्द किशोर पटवारी राजकीय महाविद्यालय, नीमकाथाना, राजस्थान

सारांश

प्रस्तुत शोध-आलेख आदिवासी अस्मिता और राजनीतिक चेतना के अंतर्संबंध का विश्लेषण भारत की सबसे बड़ी जनजाति ‘‘भील’’ के संदर्भ में, विशेष रूप से राजस्थान के दक्षिणी वागड़ अंचल को केंद्र में रखकर करता है। अध्ययन यह दर्शाता है कि भीलों की राजनीतिक चेतना कोई अचानक उभरी परिघटना नहीं, बल्कि उपनिवेशकालीन शोषण, भूमि एवं वन-अधिकारों से बेदखली, तथा सांस्कृतिक अस्मिता के क्षरण के विरुद्ध चली आ रही दीर्घकालिक प्रतिरोध-परंपरा का समकालीन विस्तार है। मानगढ़ (1913) से लेकर भारत आदिवासी पार्टी के उदय (2023) तक की यात्रा को रेखांकित करते हुए यह आलेख यह तर्क प्रस्तुत करता है कि अस्मिता और राजनीति भीलों के लिए परस्पर पृथक क्षेत्र नहीं, बल्कि एक ही सातत्य के दो छोर हैं, जहाँ 'आदिवासी' पहचान स्वयं एक राजनीतिक दावा बन जाती है।

मुख्य शब्द: आदिवासी अस्मिता, राजनीतिक चेतना, भील जनजाति, वागड़, भील प्रदेश, भारत आदिवासी पार्टी, मानगढ़, पाँचवीं अनुसूची, वन अधिकार।

1. प्रस्तावना

अस्मिता और राजनीतिक चेतना समकालीन समाज-विज्ञान की दो ऐसी संकल्पनाएँ हैं जो किसी भी वंचित समुदाय के आत्म-बोध और सामूहिक कर्तृत्व को समझने की कुंजी प्रस्तुत करती हैं। जब कोई समुदाय अपने को 'दूसरों' से भिन्न एवं विशिष्ट रूप में पहचानने लगता है और उस भिन्नता को अधिकार, प्रतिनिधित्व तथा गरिमा के दावों में रूपांतरित करता है, तब अस्मिता राजनीतिक चेतना का रूप ग्रहण कर लेती है। भारत के जनजातीय समुदायों के संदर्भ में यह प्रक्रिया विशेष रूप से जटिल एवं बहुस्तरीय है, क्योंकि यहाँ पहचान केवल सांस्कृतिक प्रश्न नहीं, बल्कि भूमि, जंगल, भाषा, धर्म और संवैधानिक संरक्षण से जुड़ा हुआ अस्तित्वगत प्रश्न है।

भील जनजाति इस दृष्टि से एक अत्यंत उपयुक्त अध्ययन-केंद्र है। जनसंख्या की दृष्टि से यह भारत की सबसे बड़ी अनुसूचित जनजाति है और राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र के सीमावर्ती पर्वतीय-वन क्षेत्रों में इसका विस्तार है। राजस्थान में भीलों की सघन उपस्थिति डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, उदयपुर, चित्तौड़गढ़ तथा सिरोही जिलों में ‘‘जिन्हें सामूहिक रूप से 'वागड़' अथवा दक्षिणी राजस्थान का

जनजातीय अंचल कहा जाता है" देखी जा सकती है। यही अंचल पिछले एक दशक में जनजातीय राजनीतिक चेतना के एक नए उभार का केंद्र बनकर उभरा है।

प्रस्तुत आलेख का केंद्रीय प्रश्न यह है: भीलों की राजनीतिक चेतना किन ऐतिहासिक, सामाजिक एवं संवैधानिक स्रोतों से पोषित होती है और वर्तमान में यह चेतना किन रूपों में अभिव्यक्त हो रही है? यह अध्ययन इस परिकल्पना पर आधारित है कि भीलों की समकालीन राजनीति चाहे वह भारत आदिवासी पार्टी का चुनावी उभार हो या 'भील प्रदेश' की मांग; अस्मिता के दावे और भौतिक अधिकारों की माँग का एक संश्लिष्ट रूप है, जिसकी जड़ें उपनिवेश-कालीन प्रतिरोध में हैं।

2. शोध के उद्देश्य एवं प्रविधि

इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

- भील जनजाति के संदर्भ में 'आदिवासी अस्मिता' की अवधारणात्मक रूपरेखा को स्पष्ट करना।
- भीलों की राजनीतिक चेतना के ऐतिहासिक स्रोतों—प्रतिरोध, सुधार एवं आंदोलनों का विश्लेषण करना।
- समकालीन राजनीतिक अभिव्यक्तियों, विशेषकर भारत आदिवासी पार्टी के उदय तथा 'भील प्रदेश' की मांग का मूल्यांकन करना।
- अस्मिता से जुड़े समकालीन प्रश्नों—पृथक धार्मिक कोड, डीलिस्टिंग विवाद तथा वन-भूमि अधिकारों का समालोचनात्मक परीक्षण करना।

प्रविधि की दृष्टि से यह एक गुणात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है, जो द्वितीयक स्रोतों—शोध-ग्रंथों, संवैधानिक प्रावधानों, जनगणना-आँकड़ों, समाचार-विश्लेषणों तथा समकालीन राजनीतिक घटनाक्रमों पर आधारित है। अध्ययन ऐतिहासिक-वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक दोनों पद्धतियों का समन्वय करता है।

3. भील जनजाति: भौगोलिक एवं जनसांख्यिकीय परिचय

भील भारत की प्राचीनतम एवं संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी जनजातियों में से एक हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार देश की कुल अनुसूचित जनजाति जनसंख्या में भीलों का हिस्सा लगभग सैंतीस प्रतिशत के आसपास आँका जाता है, जो इस समुदाय के जनसांख्यिकीय महत्व को रेखांकित करता है। इनका मुख्य विस्तार पश्चिमी एवं मध्य भारत के उस पर्वतीय-वन पट्टी में है जो राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र की सीमाओं को जोड़ती है।

भाषिक दृष्टि से भील समुदाय **'भीली'** एवं उसकी अनेक क्षेत्रीय उपभाषाओं—वागड़ी, मेवाड़ी, गरासिया आदि का प्रयोग करता है। यह भाषिक विविधता उनके व्यापक भौगोलिक विस्तार एवं सांस्कृतिक बहुलता की परिचायक है। धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन में प्रकृति-पूजा, पूर्वज-स्मरण, ग्राम-देवता तथा टोटम-आधारित मान्यताओं की प्रधानता रही है, यद्यपि सदियों के सामाजिक संपर्क से हिंदू लोक-परंपराओं का समावेश भी हुआ है। यही धार्मिक विशिष्टता आगे चलकर पृथक धार्मिक पहचान के दावे का आधार बनती है।

राजस्थान में भीलों का हृदय-स्थल 'वागड़' है—डूंगरपुर और बाँसवाड़ा इसके केंद्र हैं, जिनके साथ प्रतापगढ़, उदयपुर, चित्तौड़गढ़, सिरोही तथा भीलवाड़ा एवं जालोर के कुछ भाग जुड़ते हैं। यह क्षेत्र संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अंतर्गत आने वाले अनुसूचित क्षेत्रों में सम्मिलित है, जहाँ जनजातीय हितों के संरक्षण हेतु विशेष प्रशासनिक प्रावधान लागू होते हैं। किंतु व्यवहार में यही अंचल शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार एवं कुपोषण के सूचकांकों पर राज्य के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में गिना जाता है और रोज़गार हेतु गुजरात की ओर होने वाला मौसमी प्रवास यहाँ की स्थायी सामाजिक-आर्थिक परिघटना है।

4. आदिवासी अस्मिता: अवधारणात्मक विमर्श

'आदिवासी अस्मिता' कोई एकाश्मक (monolithic) संकल्पना नहीं है; यह भाषिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, भूभागीय एवं राजनीतिक तत्वों से बुनी हुई एक बहुस्तरीय पहचान है। इसका केंद्रीय दावा 'मूलनिवासिता' का है अर्थात इस भू-भाग के आदि-निवासी होने का बोध, जो 'बाहरी' और 'भीतरी' के बीच एक नैतिक एवं ऐतिहासिक विभाजन-रेखा खींचता है।

इस विमर्श का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम शब्दावली का राजनीतिक संघर्ष है। **'आदिवासी'** शब्द 'आदि' अर्थात मूल निवासी होने का दावा करता है और इसके साथ भूमि, इतिहास एवं स्वायत्तता का गहन राजनीतिक अर्थ जुड़ा है। इसके विपरीत **'वनवासी'** शब्द पहचान को मात्र भौगोलिक निवास (जंगल में रहने वाला) तक सीमित कर देता है और, आलोचकों के अनुसार, जनजातीय समुदाय को एक व्यापक हिंदू-सांस्कृतिक ढाँचे में समाहित करने की प्रवृत्ति को अभिव्यक्त करता है। शब्दों का यह विवाद वस्तुतः अस्मिता के स्वामित्व का विवाद है।

अतः भील अस्मिता को समझने के लिए तीन परस्पर गुँथे हुए स्तरों को पहचानना आवश्यक है: पहला, सांस्कृतिक स्तर—भाषा, अनुष्ठान एवं प्रकृति-केंद्रित जीवन-दृष्टि; दूसरा, भौतिक स्तर—भूमि, जल एवं वन-संसाधनों पर सामुदायिक दावा; और तीसरा, राजनीतिक स्तर—प्रतिनिधित्व, स्वशासन एवं संवैधानिक संरक्षण की माँग। जब ये तीनों स्तर एक साथ सक्रिय होते हैं, तब अस्मिता 'अस्मिता की राजनीति' में रूपांतरित हो जाती है।

5. ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: अस्मिता एवं प्रतिरोध की परंपरा

भीलों की राजनीतिक चेतना को समकालीन घटना मान लेना एक भूल होगी। इसकी जड़ें सदियों पुरानी प्रतिरोध-परंपरा में हैं, जिसके कुछ प्रमुख पड़ाव यहाँ रेखांकित किए जा रहे हैं।

5.1 वीरता की स्मृति: राणा पूंजा एवं भील-योद्धा परंपरा

भील सामूहिक स्मृति में सोलहवीं शताब्दी के भील सरदार राणा पूंजा (भीलू राणा) का विशिष्ट स्थान है, जिन्हें महाराणा प्रताप के सहयोगी के रूप में स्मरण किया जाता है। समकालीन जनजातीय संगठन इस ऐतिहासिक स्मृति को अस्मिता-निर्माण के सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में सक्रिय रूप से पुनर्जीवित कर रहे हैं; गाँवों, बस-अड्डों एवं सार्वजनिक स्थलों पर भीलू राणा के चित्र इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यह प्रतीक-राजनीति अस्मिता को गौरवमयी अतीत से जोड़कर उसे राजनीतिक ऊर्जा प्रदान करती है।

5.2 उपनिवेशकालीन बेदखली: मंदसौर संधि (1818)

उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटिश सत्ता के विस्तार ने भीलों की पारंपरिक स्वायत्त व्यवस्था को गहरा आघात पहुँचाया। 1818 की मंदसौर संधि के पश्चात भील समुदाय ब्रिटिश नियंत्रण के दायरे में आ गया, उनके वन-अधिकार सीमित कर दिए गए और पारंपरिक आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हुई। इस बेदखली ने 'भूमि' और 'जंगल' को भील अस्मिता के केंद्रीय प्रश्न में बदल दिया, एक ऐसा प्रश्न जो आज भी उनकी राजनीति की धुरी बना हुआ है।

5.3 गोविंद गुरु, भगत आंदोलन एवं मानगढ़ (1913)

बीसवीं शताब्दी के आरंभ में समाज-सुधारक एवं आध्यात्मिक नेता गोविंद गुरु ने भीलों के बीच 'भगत आंदोलन' का सूत्रपात किया, जिसने मद्यपान-निषेध, शुद्ध आचरण एवं आत्म-सम्मान के माध्यम से सामाजिक जागरण का कार्य किया। यह आंदोलन धीरे-धीरे ब्रिटिश एवं रियासती दमन के विरुद्ध सामूहिक प्रतिरोध में रूपांतरित हो गया।

17 नवंबर 1913 को राजस्थान-गुजरात सीमा पर स्थित मानगढ़ पहाड़ी पर एकत्रित हजारों भीलों पर ब्रिटिश सेना ने गोलियाँ चलाईं, जिसमें लगभग डेढ़ हज़ार आदिवासी मारे गए। इस नरसंहार को प्रायः 'आदिवासी जलियाँवाला' कहा जाता है। मानगढ़ भील राजनीतिक चेतना का

सर्वाधिक शक्तिशाली स्मृति-प्रतीक है; यहीं से 'भील प्रदेश' की मांग का ऐतिहासिक सूत्र भी जोड़ा जाता है और आज भी यह स्थल जनजातीय अस्मिता के सामूहिक आयोजनों का केंद्र बना हुआ है।

5.4 मोतीलाल तेजावत एवं 'एकी' आंदोलन

1920 के दशक में मोतीलाल तेजावत के नेतृत्व में चला 'एकी आंदोलन' (भोमट आंदोलन) दक्षिणी राजस्थान के भीलों एवं गरासियों के बीच अत्यधिक कर-वसूली, बेगार (बलात श्रम) एवं सामंती अत्याचारों के विरुद्ध एक संगठित प्रतिरोध था। इस आंदोलन ने भीलों में सामूहिक अधिकार-चेतना एवं संगठित राजनीतिक कर्तृत्व के बीज बोए, जो आगे चलकर आधुनिक जनजातीय राजनीति की पृष्ठभूमि बने।

6. राजनीतिक चेतना का उद्भव एवं विकास

स्वतंत्रता के पश्चात भीलों की राजनीतिक भागीदारी मुख्यतः स्थापित राष्ट्रीय दलों विशेषकर कांग्रेस और बाद में भारतीय जनता पार्टी के माध्यम से हुई। अनुसूचित जनजातियों हेतु आरक्षित सीटों की व्यवस्था ने प्रतिनिधित्व तो सुनिश्चित किया, किंतु आलोचकों का मत है कि यह प्रतिनिधित्व प्रायः 'आश्रित' रहा अर्थात जनजातीय जनप्रतिनिधि बड़े दलों की नीतियों के अनुसार कार्य करते रहे, न कि स्वायत्त जनजातीय एजेंडे के अनुसार।

इस स्थिति में परिवर्तन का बीज 2015 के आसपास 'आदिवासी परिवार' जैसे विचारधारात्मक-छात्र संगठनों से पड़ा, जिन्होंने अस्मिता, भूमि-अधिकार एवं सांस्कृतिक संरक्षण को केंद्र में रखकर एक स्वतंत्र जनजातीय राजनीतिक विमर्श विकसित किया। इसी चेतना ने पड़ोसी गुजरात में गठित भारतीय ट्राइबल पार्टी (BTP) के माध्यम से पहली बार स्वतंत्र चुनावी अभिव्यक्ति पाई, जब इस बैनर तले 2018 के राजस्थान विधानसभा चुनाव में जनजातीय प्रत्याशी उतरे।

यह संक्रमण भीलों की राजनीतिक चेतना के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ है; सामाजिक सुधार एवं सांकेतिक प्रतिनिधित्व से आगे बढ़कर स्वायत्त जनजातीय दलीय राजनीति की ओर। यहीं से समकालीन अध्याय आरंभ होता है।

7. समकालीन राजनीतिक अभिव्यक्ति: भारत आदिवासी पार्टी का उदय

सितंबर 2023 में BTP से अलग होकर राजकुमार रोत एवं अन्य नेताओं ने 'भारत आदिवासी पार्टी' (BAP) का गठन किया, जो अल्प समय में ही दक्षिणी राजस्थान की जनजातीय राजनीति का सबसे प्रभावशाली स्वर बन गई। पार्टी ने 2023 के राजस्थान विधानसभा चुनाव में तीन सीटें जीतीं और मध्य प्रदेश में भी एक सीट पर सफलता पाई; जो किसी नवगठित जनजातीय दल के लिए उल्लेखनीय उपलब्धि थी।

2024 का लोकसभा चुनाव इस उभार का शिखर सिद्ध हुआ, जब पार्टी संस्थापक राजकुमार रोत ने बाँसवाड़ा-डूंगरपुर आरक्षित लोकसभा सीट पर लगभग ढाई लाख मतों के भारी अंतर से विजय प्राप्त कर पार्टी को संसद तक पहुँचाया। इसके पश्चात बागीदौरा उपचुनाव में भी पार्टी को सफलता मिली और 2024 के अंत में हुए विधानसभा उपचुनावों में उसने अपनी उपस्थिति को और सुदृढ़ किया।

BAP की राजनीति की केंद्रीय धुरी अस्मिता एवं भौतिक अधिकारों का संश्लेषण है। एक ओर पार्टी यह दावा करती है कि आदिवासियों की एक विशिष्ट, प्रकृति-आधारित पहचान है जो प्रचलित संगठित धर्मों से भिन्न है; दूसरी ओर वह भूमि के स्वामित्व, वन-अधिकार, शिक्षा, रोज़गार एवं कुपोषण जैसे ठोस मुद्दों को उठाती है। भूमि का प्रश्न—यह भावना कि 'यह हमारी भूमि है किंतु काग़ज़ों में हमारे नाम नहीं'—इस राजनीति की भावनात्मक एवं भौतिक दोनों धुरी है।

विश्लेषणात्मक दृष्टि से BAP का उदय जनजातीय राजनीतिक चेतना के 'स्वायत्तीकरण' का प्रतीक है अर्थात बड़े राष्ट्रीय दलों की छाया से बाहर निकलकर एक स्वतंत्र जनजातीय राजनीतिक कर्तृत्व का निर्माण। यह प्रवृत्ति उस व्यापक असंतोष की अभिव्यक्ति है जिसमें अनेक भील मतदाता यह अनुभव करते हैं कि स्थापित दलों ने उन्हें केवल 'वोट-बैंक' के रूप में देखा है।

8. 'भील प्रदेश' की मांग: एक विश्लेषण

भील राजनीतिक चेतना की सर्वाधिक महत्वाकांक्षी अभिव्यक्ति 'भील प्रदेश' अर्थात एक पृथक जनजातीय राज्य की मांग है। इस मांग के अनुसार राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश एवं महाराष्ट्र के जनजातीय-बहुल जिलों (विभिन्न स्रोतों में इनकी संख्या तैंतालीस से उनचास तक बताई जाती है) को मिलाकर एक ऐसा राज्य बनाया जाए जो भीलों की सांस्कृतिक, भाषिक एवं भौगोलिक एकता को राजनीतिक स्वरूप प्रदान करे। ऐतिहासिक रूप से इस मांग का सूत्र गोविंद गुरु एवं मानगढ़ की विरासत से जोड़ा जाता है।

जुलाई 2025 में बाँसवाड़ा में आयोजित 'भील जनजातीय सम्मेलन' में हज़ारों भीलों की उपस्थिति ने इस मांग को नई ऊर्जा दी, जहाँ यह तर्क प्रमुखता से रखा गया कि स्वतंत्रता के सात दशकों बाद भी जनजातीय समुदाय की मूलभूत माँगें अपूर्ण हैं और जल, वन एवं रोज़गार जैसे संसाधनों तक उनकी पहुँच अवरुद्ध है। समर्थक इस मांग को संविधान की पाँचवीं अनुसूची तथा अनुच्छेद 244(1) के अंतर्गत जनजातीय स्वशासन के प्रावधानों से भी जोड़ते हैं।

इस मांग का समालोचनात्मक मूल्यांकन आवश्यक है। समर्थन में दिए जाने वाले तर्क हैं: भीलों की भाषिक-सांस्कृतिक एकता चार राज्यों की प्रशासनिक सीमाओं में विभाजित है; इस विभाजन के कारण उन्हें किसी भी राज्य में निर्णायक राजनीतिक शक्ति प्राप्त नहीं होती; और केंद्रित शासन ही उनके विकास एवं सांस्कृतिक संरक्षण को सुनिश्चित कर सकता है। दूसरी ओर, विरोध में यह कहा जाता है कि पहचान-आधारित राज्यों का निर्माण सामाजिक विभाजन को बढ़ा सकता है, तथा इससे अन्य क्षेत्रीय मांगों के लिए भी द्वार खुल सकते हैं; यही कारण है कि राज्य सरकारें एवं राष्ट्रीय दल दोनों इस विषय पर सतर्क एवं प्रायः प्रतिरोधी रुख अपनाते हैं।

यथार्थ यह है कि अंतर-राज्यीय पुनर्गठन की जटिलता, संसाधन-बँटवारे का प्रश्न तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव के कारण निकट भविष्य में इस मांग की पूर्ति की संभावना क्षीण है। किंतु विश्लेषणात्मक दृष्टि से 'भील प्रदेश' की मांग का महत्व उसके तात्कालिक साकार होने में नहीं, बल्कि उस प्रतीकात्मक एवं संगठनात्मक भूमिका में है जो यह जनजातीय अस्मिता को एकजुट करने एवं राजनीतिक चेतना को गतिशील रखने में निभाती है।

9. अस्मिता के समकालीन प्रश्न

9.1 पृथक धार्मिक कोड की मांग

भील अस्मिता-राजनीति का एक प्रमुख आयाम जनगणना में पृथक जनजातीय/आदिवासी धार्मिक कोड की मांग है। समर्थकों का तर्क है कि 1931 तक जनगणना में जनजातीय धर्म के लिए पृथक स्तंभ था, जिसे पुनर्स्थापित किया जाना चाहिए, क्योंकि प्रकृति-पूजा एवं पूर्वज-स्मरण पर आधारित उनकी आस्था हिंदू, ईसाई, इस्लाम, जैन, सिख अथवा बौद्ध; किसी भी स्थापित धर्म से भिन्न है। यह मांग वस्तुतः अस्मिता को धार्मिक स्तर पर संस्थागत मान्यता दिलाने का प्रयास है।

9.2 'डीलिस्टिंग' विवाद

इसके समानांतर 'डीलिस्टिंग' का विवाद जनजातीय राजनीति को दो ध्रुवों में विभाजित करता है। एक पक्ष यह मांग करता है कि जो जनजातीय व्यक्ति ईसाई अथवा इस्लाम अपना लें, उन्हें अनुसूचित जनजाति के आरक्षण-लाभों से वंचित कर दिया जाए। दूसरा पक्ष इसका विरोध करते

हुए तर्क देता है कि अनुसूचित जनजाति की स्थिति अनुच्छेद 342 के अंतर्गत नृजातीय एवं सांस्कृतिक आधार पर निर्धारित होती है, न कि धर्म के आधार पर; अतः धर्म-परिवर्तन से जनजातीय पहचान समाप्त नहीं होती। यह विवाद अस्मिता की परिभाषा के स्वामित्व का संघर्ष है, जिसमें 'आदिवासी' बनाम 'वनवासी' की शब्दावली-राजनीति भी अंतर्निहित है।

9.3 भूमि एवं वन-अधिकार

इन सांस्कृतिक-प्रतीकात्मक प्रश्नों के मूल में भूमि एवं वन-संसाधनों का ठोस भौतिक प्रश्न विद्यमान है। वन अधिकार अधिनियम, 2006 के प्रावधानों के बावजूद अनेक भील परिवार उस भूमि के औपचारिक स्वामित्व से वंचित हैं जिस पर वे पीढ़ियों से खेती एवं निवास करते आए हैं। वन-विभाग एवं शासन द्वारा भूमि-अधिग्रहण, अधूरी क्रियान्वित योजनाएँ तथा स्वामित्व-अभिलेखों का अभाव; ये सब मिलकर भील असंतोष का भौतिक आधार तैयार करते हैं, जिसे समकालीन जनजातीय राजनीति प्रभावी रूप से अभिव्यक्त कर रही है।

10. विश्लेषण एवं चुनौतियाँ

उपर्युक्त विवेचन से कुछ केंद्रीय निष्कर्ष उभरते हैं। पहला, भीलों में अस्मिता एवं राजनीति परस्पर पृथक क्षेत्र नहीं हैं; अपितु सांस्कृतिक पहचान का प्रत्येक दावा—भाषा, धर्म, स्मृति; अनिवार्यतः एक राजनीतिक दावा बन जाता है और प्रत्येक राजनीतिक माँग अस्मिता की भाषा में अभिव्यक्त होती है। दूसरा, यह चेतना ऐतिहासिक सातत्य में स्थित है—मानगढ़ की स्मृति, एकी आंदोलन की विरासत तथा भूमि-बेदखली का अनुभव समकालीन राजनीति में निरंतर पुनर्जीवित होते रहते हैं।

तथापि इस चेतना के समक्ष अनेक चुनौतियाँ भी हैं। स्वायत्त जनजातीय राजनीति के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती यह है कि वह प्रतीकात्मक अस्मिता-राजनीति एवं ठोस विकासात्मक उपलब्धियों के बीच संतुलन कैसे साधे—अर्थात अस्मिता का दावा शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोज़गार जैसे भौतिक परिणामों में किस सीमा तक रूपांतरित हो पाता है। दूसरी चुनौती अंतर्जनजातीय एकता की है, क्योंकि भील, मीणा एवं गरासिया जैसे विभिन्न समुदायों के हित एवं दृष्टिकोण सदैव एकरूप नहीं होते। तीसरी चुनौती धार्मिक ध्रुवीकरण की है, जो डीलिस्टिंग जैसे विवादों के माध्यम से जनजातीय एकता को विभाजित करने की क्षमता रखता है।

अंततः, यह प्रश्न भारतीय लोकतंत्र की उस व्यापक क्षमता से भी जुड़ा है कि वह अपने मूलनिवासी समुदायों की राजनीतिक एवं भूभागीय आकांक्षाओं को केवल विद्यमान ढाँचों में समाहित करने के बजाय कहाँ तक सार्थक मान्यता एवं सहभागिता प्रदान कर पाता है।

11. निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भील जनजाति की राजनीतिक चेतना एक दीर्घकालिक ऐतिहासिक प्रक्रिया की समकालीन परिणति है, जिसमें अस्मिता केंद्रीय संचालक-शक्ति के रूप में कार्य करती है। मंदसौर संधि से आरंभ हुई भूमि-बेदखली, गोविंद गुरु के भगत आंदोलन एवं मानगढ़ के बलिदान, मोतीलाल तेजावत के एकी आंदोलन और अंततः भारत आदिवासी पार्टी के उदय तथा भील प्रदेश की मांग—यह समस्त शृंखला एक ही सूत्र में गुँथी हुई है: अपनी विशिष्ट पहचान, भूमि एवं गरिमा को सुरक्षित रखने का सामूहिक संघर्ष।

राजस्थान के संदर्भ में यह चेतना आज अपने सर्वाधिक संगठित एवं मुखर स्वरूप में है। इसकी दीर्घकालिक सार्थकता इस बात पर निर्भर करेगी कि यह अस्मिता के प्रतीकात्मक दावों को जनजातीय जन-समुदाय के ठोस सामाजिक-आर्थिक उत्थान में कितनी कुशलता से रूपांतरित कर पाती है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि भील अब भारतीय राजनीति के हाशिये पर मौन दर्शक नहीं, अपितु अपनी अस्मिता एवं अधिकारों के सक्रिय दावेदार के रूप में उभर चुके हैं और यही इस विश्लेषणात्मक अध्ययन का केंद्रीय प्रतिपाद्य है।

संदर्भ सूची

1. जनगणना भारत (2011)। अनुसूचित जनजाति जनसंख्या आँकड़े। भारत के महापंजीयक कार्यालय।
2. भारत सरकार। भारत का संविधान—पाँचवीं अनुसूची एवं अनुच्छेद 244(1), 342। नई दिल्ली।
3. वन अधिकार अधिनियम (2006)। अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वनवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम।
4. Hardiman, D. (1987). The Coming of the Devi: Adivasi Assertion in Western India. Oxford University Press.
5. The Wire (2024)। 'Bharat Adivasi Party: Battling BJP's Hindutva, One Election at a Time'—दक्षिणी राजस्थान की जनजातीय राजनीति पर क्षेत्रीय रिपोर्ताज।
6. Business Standard (2024)। 'LS polls mark rise of Bharat Adivasi Party in Rajasthan's tribal belt'—लोकसभा चुनाव विश्लेषण।
7. The Mooknayak (2024)। भील प्रदेश की मांग एवं मानगढ़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रिपोर्ट।
8. Intercontinental Cry / IC Magazine (2025-26)। 'The Bhils' Long Fight for Recognition Gains New Attention in India।'
9. न्यूज़क्लिक, आदिवासी पृथक धार्मिक कोड एवं डीलिस्टिंग विवाद पर समकालीन विश्लेषण (2021-2026)।
10. Skaria, A. (1999). Hybrid Histories: Forests, Frontiers and Wildness in Western India. New Delhi: Oxford University Press.
11. Baviskar, A. (1995). In the Belly of the River: Tribal Conflicts over Development in the Narmada Valley. New Delhi: Oxford University Press.
12. Xaxa, V. (2008). State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India. New Delhi: Pearson Education India.
13. Sundar, N. (Ed.). (2016). The Scheduled Tribes and Their India: Politics, Identities, Policies, and Work. New Delhi: Oxford University Press.
14. Nilsen, A. G. (2015). Subalterns and the State in the Longue Durée: Notes from 'The Rebellious Century' in the Bhil Heartland. Journal of Contemporary Asia, 45(4), 574–595.
15. Vashishtha, V. K. (1991). The Bhil Revolt of 1913 under Guru Govindgiri among the Bhils of Southern Rajasthan and its Impact. Proceedings of the Indian History Congress, 52.
16. Jain, P. C. (1991). Tribal Agrarian Movement: A Case Study of the Bhil Movement of Rajasthan. Udaipur: Himanshu Publications.
17. Vidal, D. (1997). Violence and Truth: A Rajasthani Kingdom Confronts Colonial Authority. New Delhi: Oxford University Press.